Sahitya Manthan
A Peer-Reviewed, Open Access e-journal
ISSN: 2582 6867, Website: http://www.sahityamanthan.in
Year-2, Issue-5, Continuous Issue-11, January - February 2022

आत्मनिर्भर भारत के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद और रवींद्रनाथ टैगोर

सुदीप बसु

आत्मनिर्भरता शब्द हमारे लिए नया नहीं है। हम इसके अर्थ से भी परिचित हैं। कोई देश, कोई राष्ट्र, कोई समाज कई तरह से आत्मनिर्भर होता है। इनमें आर्थिक आत्मनिर्भरता, शैक्षिक आत्मनिर्भरता, साहित्यिक-सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता आदि शामिल हैं। हम कह सकते हैं कि आत्मनिर्भरता का मुख्य संकेत किसी दूसरे देश या राष्ट्र पर निर्भर हुए बिना अपनी शक्ति में मजबूत होना है। कहने की जरूरत नहीं है कि यह सुनने में जितना आसान है, काम में सफलता लाना उतना ही मुश्किल है।

आजादी के बाद के समय भारत में विभिन्न योजनाओं के माध्यम से आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ाया है। पंचवर्षीय योजना, बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना, लघु उद्योगों का विस्तार और प्रचार आदि। वह काम अभी भी जारी है। हम देखते हैं कि काम सार्वजनिक और निजी दोनों तरह से आगे बढ़ रहा है। इस संबंध में नरेंद्रपुर रामकृष्ण मिशन लोकशिक्षा परिषद और अन्य धर्मार्थ संगठनों की प्रमुख भूमिका है। वे लोगों को आत्मनिर्भर बनने की राह दिखा रहे हैं।

लेकिन नमक बेलने का काम कब शुरू हुआ? यानी भारतीयों को आत्मनिर्भर बनने की आवश्यकता के बारे में सबसे पहले कब सोचा गया? अगर हम आधुनिक इतिहास पर नजर डालें तो हम देख सकते हैं कि यह कम से कम सौ साल पुराना है। आधुनिक भारत के दो महान बिचारी स्वामी विवेकानंद और रवींद्रनाथ टैगोर ने इस आत्मनिर्भरता की योजना अपने दम पर बनाई थी। उनकी सोच ने काफी हद तक भारत को वर्तमान आत्मनिर्भर राष्ट्र बना दिया है।

मैं आपको सूचित करता हूं कि मेरे भाषण के शीर्षक में रवींद्रनाथ जी का नाम विवेकानंद जी के नाम के बाद रखा गया है। इसमें रवींद्र-प्रशंसक घायल हो सकते हैं। लेकिन यह भी सच है कि विवेकानंद जी भारत को आत्मनिर्भर बनाने वाले पहले योजनाकार थे। कुछ साल बाद, रवींद्रनाथ जी ने इसके बारे में सोचा। दोनों में मतभेद होना चाहिए। लेकिन बुनियादी क्षेत्र में दोनों एक हैं। दूसरे शब्दों में, भारत के आत्मनिर्भर बनने के औचित्य पर दोनों का एक ही निर्णय है।

आत्मनिर्भर भारत के संदर्भ में स्वामी विवेकानंद

विवेकानंद जी को भारत और भारतीय समाज का व्यापक अनुभव था। उन्होंने कश्मीर से कन्याकुमारिका को अपनी तीन बार की तीर्थयात्रा में पैदल ही देखा है। उन्होंने विविध सार्वजनिक जीवन, विविध व्यवसायों, इस बहु-धार्मिक देश की विविध मानसिकता, औपनिवेशिक भारत के प्रति ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता के क्रूर दमन और अंतहीन लालची शोषण को देखा। साधु होने कि कारण उन्हें भी कभी-कभी असहज परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था।

इस स्थिति में, अन्य रमता संन्यासियों की तरह, विवेकानंद जी गृहस्थ की दुर्दशा की कल्पना नहीं कर सकते थे। उन्होंने नही कहा, ये सभी माया या गृहस्थ अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। इसके अलावा, वेदांत को वन से गृह में लाना, आत्मानो मोक्षार्थंग जगत हिताय च - विवेकानंद जी की मातृभूमि के विचार के निर्माता भी हैं। तो विवेकानंद जी की अपने देश को आत्मनिर्भर बनाने की सोच तीन दिशाओं में गई है - पहली, आर्थिक आत्मनिर्भरता। दूसरी, शैक्षिक आत्मनिर्भरता। तीसरी, साहित्यिक-सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता। इन तीन सूत्र की चर्चा करके हम देखेंगे कि विवेकानंद जी ने एक आत्मनिर्भर भारत के निर्माण के बारे में कैसे सोचा।

पहला सूत्र

सिस्टर गार्गी (विवेकानंद-जीवनी लेखिका मैरी लुई बर्क) के अनुसार, विवेकानंद जी ने शिकागो धर्म के लिए अपने उत्कृष्ट भाषण देने से पहले भारत में औद्योगीकरण के महत्व के बारे में बात की थी। विवेकानंद जी कहते हैं, "अमेरिकियों ने भारत को धर्म में प्रशिक्षित करने के लिए मिशनरियों को भेजने के बजाय, उन्हें औद्योगिक शिक्षा देने के लिए किसी को भारत भेजना बेहतर होगा।" [अगस्त 1893, 'न्यू डिस्कवरीज', एमएल बर्क]।

इन शब्दों के लिए स्वामीजी की एक विशिष्ट दिशा है। आर्थिक सुधार के परिणामस्वरूप स्थानीय लोगों की भोजन, वस्त्र, आश्रय, चिकित्सा, शिक्षा आदि की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। और उद्योग और व्यापार की स्थापना से ही आर्थिक विकास संभव है। ऐसा नहीं है कि विवेकानंद को यांत्रिकी के श्राप की जानकारी नहीं थी। लेकिन मशीनरी के बिना भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार नहीं होगा। उनकी अमेरिका यात्रा का एक प्राथमिक उद्देश्य उस देश में विज्ञानकला का अध्ययन करना था। स्वामीजी ने जमशेद जी टाटा से अमेरिका जाने वाले जहाज पर लंबी चर्चा की। स्वामीजी ने उन्हें उस समय विज्ञान सिखाने में सक्षम संन्यासीओं के एक संघ के गठन के बारे में भी बताया। इसलिए बाद में जब जमशेद जी ने विज्ञान मंदिर बनाने की पहल की, तो उन्होंने स्वामीजी से उनका नेतृत्व करने का अनुरोध किया। स्वामीजी की अंग्रेजी जीवनी में टाटा द्वारा लिखे गए पत्र का एक प्रतिकृति प्रिंट है।

1896 में कलकत्ता में बलराम बसु के घर पर श्री रामकृष्ण के भक्तों के सामने रामकृष्ण मिशन के उद्घाटन के अवसर पर, स्वामीजी ने मिशन के उद्देश्य के बारे में कहा -

"लोगों की सांसारिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए शिक्षा के लिए उपयुक्त लोगों को शिक्षित करना, विज्ञान और श्रम को प्रोत्साहित करना, और रामकृष्ण के जीवन में बताए गए वेदांत और अन्य धर्मों को जनता के सामने पेश करना।" ['स्वामी शिष्य-संगबाद' - प्रस्तावना]।

बेलूर मठ के नियमों में औद्योगिक विकास का मुद्दा भी है। वहाँ देखा -

“अब उद्देश्य इस मठ को धीरे-धीरे एक सुंदर विश्वविद्यालय में बदलना है। इसमें दार्शनिक और धार्मिक अभ्यास के साथ एक पूर्ण तकनीकी संस्थान स्थापित किया जाना चाहिए; यह पहला कर्तव्य है, फिर धीरे-धीरे अन्य तत्वों को जोड़ा जाएगा।"

बेलूर मठ के नियम 26 और 27 में और भी लिखा है -

“कई उपजाऊ, स्वस्थ भूमि अभी भी मध्य भारत में हजारीबाग जिले के पास आसानी से पाई जा सकती है। उस प्रांत में एक बड़ा भू-भाग लेना होगा और एक बड़ा औद्योगिक स्कूल और

धीरे-धीरे उस पर एक कारखाना खोलना होगा।" ['स्वामी विवेकानंद और श्री श्री रामकृष्ण संघ', सरलबाला सरकार।]

स्मरण रहे, स्वामीजी ने अकाल आदि के कारण अस्थायी सहायता की आवश्यकता से कभी इनकार नहीं किया। लेकिन उन्हें कहीं, इससे ज्यादा वित्तीय पुनर्वास की जरूरत थी। गरीब लोगों के लिए अस्थाई मदद की जरूर जरूरत होगी। लेकिन केवल वित्तीय पुनर्वास ही उसकी स्थायी मदद हो सकता है। स्वामीजी इस मामले में अपने समकालीनों से काफी आगे थे। क्योंकि उनकी आंखों के सामने भविष्य के आत्मनिर्भर भारत की तस्वीर थी।

दूसरा सूत्र

विवेकानंद ने स्वयं औपनिवेशिक शिक्षा प्राप्त की थी। आपने देखा है कि औपनिवेशिक शिक्षा कुशलता से भारतीयों का ब्रेनवॉश किया जा रहा है। भारत के साहित्यिक-भूगोल-इतिहास की जगह भारतीय ने इंग्लैंड का साहित्य-भूगोल-इतिहास पढ़ रहे हैं। यह भयानक विद्या मेधावी भारतीय छात्रों को पूर्ण गुलाम बना रही थी। शिक्षित भारतीय अब भारतीय नहीं रहे। वह बाहर से अश्वेत भारतीय और अंदर से श्वेत अंग्रेज बनता जा रहा था। इसके विरुद्ध स्वामीजी ने सबसे पहले वेदांत आधारित परिभाषा का उच्चारण किया - "शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता के विकास का नाम है।" इस शिक्षा का मुख्य लक्ष्य व्यक्तित्व विकास है। इसलिए शिक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भर होना बहुत जरूरी है। स्वामीजी ने सार्वजनिक शिक्षा पर जोर दिया।

लोगों के अधिकारों को बहाल करने के लिए, उन्हें ठीक से शिक्षित करने की आवश्यकता है। स्वामीजी की यहाँ के व्यावहारिक शिक्षा में अधिक रुचि थी। इसलिए उनका जोर शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष पर था। दूसरे शब्दों में, व्यावसायिक शिक्षा लोगों के लिए जीविकोपार्जन के लिए बहुत सहायक होगी। लोगों को उनकी जरूरत का पता चलेगा। उन्हें बाहरी दुनिया के बारे में भी कुछ जानकारी दी जाएगी। और धार्मिक शिक्षा भी दी जाएगी।

मैंने विज्ञान शिक्षा के बारे में पहले ही उल्लेख किया है। इससे साथ स्त्रीशिक्षा को भी जोड़ा जा सकता है। स्वामीजी का मानना था कि पक्षी एक पंख से आकाश में नहीं उड़ सकता। अतः स्त्रीशिक्षा समाज के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है। महिलाओं को आर्थिक आजादी देने के लिए उन्हें शिक्षित करने की जरूरत है।

शिक्षा कार्य के बारे में इस पूरी योजना को बनाने के लिए, यानी शिक्षा में आत्मनिर्भर बनने के लिए कुछ चीजें हम पहले ही देख चुके हैं - नव-मठवासी समुदाय यह जिम्मेदारी लेगा। स्वामीजी ने कुछ और बातें भी कहा। उनकी बातें हर लिहाज से प्रगतिशील हैं। जहां गरीबी वंचितों की शिक्षा में एक बड़ी बाधा है, वहां शिक्षा को पहले आना चाहिए। यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आ सकता, तो मुहम्मद पहाड़ के पास जाएगा। दिन के अंत में, आपको काम से थके हुए लोगों के पास जादू की लालटेन, नक्शे, ग्लोब, चार्ट आदि के साथ जाना होगा। स्वामीजी की सोच आधुनिक दूरस्थ शिक्षा सोच के अनुरूप है। देखा जा सकता है कि स्वामीजी ने शिक्षा के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता के सन्दर्भ में सरकारी सहायता से सावधानी पूर्वक परहेज किया है। बल्कि, उसने मठवासी समुदाय पर बोझ लाद दिया। मैं कह सकता हूं कि स्वामीजी उम्मीद कर रहे हैं कि युवा भी उत्साह के साथ इस कार्य में शामिल होंगे। मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता के विकास के लिए

हम एक निश्चित शिक्षा के स्थान पर एक नए भारत के निर्माण के लिए आत्मनिर्भर शिक्षा चाहते हैं, जिस पर स्वामीजी ने सबसे अधिक बल दिया।

तीसरा सूत्र

साहित्य और संस्कृति में आत्मनिर्भरता किस प्रकार आएगी? यहां स्वामीजी का संघर्ष ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता से नहीं, बल्कि अपने देशवासियों से है। स्वामीजी ने महसूस किया कि विषयों की विविधता की कमी बांग्ला साहित्य के विकास में एक बाधा थी। दूसरा ओर, बांग्ला में उच्च विज्ञान की पुस्तकें नहीं हैं। इसका एक कारण लेखकों में आत्मविश्वास की कमी है। साहित्य के वर्तमान पथ को छोड़कर नई राह पर चलने के लिए बहुत साहस की आवश्यकता होती है। और तीसरा बात, कितने प्रकाशकों में उस लेख को छापने का साहस है? इस कमी को दूर करने के लिए स्वामीजी ने स्वयं अपने 'परिब्राजक' एब्न्ग 'पूर्व और पश्चिम' ग्रंथों में ज्ञान विकसित करने का प्रयास किया था।

विवेकानंद ने विषय के अलावा साहित्य के क्षेत्र में भी विद्रोह किया होगा। साधु भाषा की परंपरा होने के बावजूद, उन्होंने बोलचाल भाषा के लिए एक मजबूत स्टैंड लिया है। उनका विद्रोह ऐसा है कि उन्होंने साहित्य में विषयवस्तु की आवश्यकता में बोलचाल की भाषा के आंशिक उपयोग के पक्ष में बंकिमचंद्र के बयान को खारिज कर दिया। यहीं से साहित्य में आत्मनिर्भरता की आवश्यकता उत्पन्न होती है।

स्वामीजी ने कहा, जीवन के सभी पहलू आम भाषा को छू सकते हैं, साधु भाषा को नहीं। इसलिए जीवन की भाषा को साहित्य में लाना चाहिए। साधु भाषा के पुराने गौरव को त्याग देना चाहिए। और इसलिए हमें लेखक की आत्म-शक्ति पर विश्वास करने की आवश्यकता है। क्योंकि ऐसा करते समय साधु भाषा की महिमा में विश्वास करने वाले साहित्यकारों और साहित्य प्रेमियों की धारदार तलवारें उनके सिर पर उतर आएंगी। यह तलवार स्वयं विवेकानंद पर गिरी थी। उदाहरण के लिए, पूर्णिमा और साहित्य पत्रिका उनके बोलचाल के साहित्य को पढ़ने के बाद कटकशे की आलोचना की। इस तरह के हमले की आशंका में, स्वामीजी ने बोलचाल की भाषा के बोधगम्य रूप के लिए पहले से तीन सूत्र दिए होंगे - एक, बोलचाल की भाषा में शब्द भारी रूप से गढ़ा जा सकता है। दो, बोलचाल की भाषा में प्रबल शक्ति होती है। तीसरा, बोलचाल की भाषा का मानक इस प्रकार होगा - "भाषा होनी चाहिए - शुद्ध स्टील की तरह - जो कुछ भी आप चाहते हैं उसे मोड़ के साथ करें - फिर जो कोई पत्थर को एक झटके से काटता है, उसके दांत नहीं गिरते।"

विवेकानंद की प्रेरणा से बंगाल की विज्ञान शिक्षा आत्मनिर्भर हुई। ऐसे समय में जब वे विदेशों में हिंदू धर्म और भारतीय संस्कृति को बढ़ावा दे रहे थे, वे पश्चिमी कला और वास्तुकला को चौड़ी आंखों से देख रहे थे। वह स्विट्जरलैंड, इटली और जर्मनी की वास्तुकला और कला से प्रभावित थे। साथ ही, इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस देश में विदेशी उद्योग की नकल उनकी मानसिक पीड़ा का कारण थी। स्वामीजी को रबीबर्मा के चित्रों की तुलना में कालीघाट की मिट्टी के बर्तन और अन्य देशी कलाएँ अधिक स्वीकार्य थीं। दूसरे शब्दों में, उन्होंने उद्योग के क्षेत्र में भी आत्मनिर्भर होने की आवश्यकता महसूस की है। उन्होंने सिस्टार निवेदिता के माध्यम से युवा भारतीय कलाकारों को स्थानीय शैली में कला बनाने के लिए प्रोत्साहित किया है। स्वामीजी से

प्रेरित होकर निवेदिता ने इस देश में न्यू बंगाल शिल्प आन्दोलन की शुरुआत की। निवेदिता के साथ अबनिंद्रनाथ टैगोर, नंदलाल बोस और अन्य लोग थे। विवेकानंद और निवेदिता की मदद से जापानी कलाकार ओकाकुरा काकुजो ने भारतीय कला के केंद्र में प्रवेश किया। विवेकानंद वास्तव में भारतीय पुनर्जागरण के पुजारियों में से एक हैं।

आत्मनिर्भर भारत के संदर्भ में रवींद्रनाथ

1905 में, बंगाल में पानी की कमी को रोकने के लिए विभिन्न समाचार पत्रों की रिपोर्टों और वहां प्रकाशित पत्रों के जवाब में ब्रिटिश सरकार से कुछ मदद के आश्वासन से रवींद्रनाथ जी विशेष रूप से नाराज थे। इसलिए उन्होंने 'स्वदेशी समाज' नाम से चैतन्य लाइब्रेरी और कर्जन थिएटर में दो बार एक ही व्याख्यान दिया जो बाद में 'स्वदेशी समाज' शीर्षक से एक लेख के रूप में प्रकाशित हुआ। रवीन्द्रनाथ जी के क्रोध का कारण उनके स्वदेशी भाइयों की हीन भावना थी। अपने लंबे निबंध में उन्होंने एक के बाद एक पैराग्राफ दिखाया - भारतीय समाज कभी भी किसी भी तरह से सरकार पर निर्भर नहीं रहा है। स्वदेशी समाज ने अपने लिए आवश्यक व्यवस्था की है। निश्चय ही आत्मनिर्भरता उन्हीं की थी। लेकिन अंग्रेजी साम्राज्य में आत्मनिर्भरता का यह प्रयास लगभग विलुप्त हो चुका है। अब देशवासियों का लक्ष्य इंग्लैंड की नकल करना है।

बंगाल में जल संकट को ध्यान में रखते हुए रवीन्द्रनाथ जी ने सोचना चाहा - समस्या सिर्फ जल संकट नहीं है। समस्या की वर्ण कई प्रकार के होते हैं। ब्रिटिश सरकार कुछ समस्या का समाधान कर सकती है। लेकिन उसके लिए सभी समस्याओं का समाधान करना संभव नहीं है। किसी भी सरकार के लिए संभव नहीं है। तो क्या? बंगाल विभाजन आंदोलन के इस दौर में रवींद्रनाथ जी ने दिखाया है कि भारतीय समाज का काम आपणी समस्याओं को बातचीत के जरिए सुलझाना है। रवींद्रनाथ जी के इस विचार ने उन्हें एक ऐसे स्थान पर पहुँचाया जहाँ वे एक अलग स्वदेशी-समाज बनाने के बारे में सोचा, भले ही वे ब्रिटिश उपनिवेश में थे। इसलिए उन्होंने इस स्वदेशी समाज का गुप्त संविधान भी लिखा। तो क्या रवींद्रनाथ जी ब्रिटिश राज के समानांतर एक भारतीय समाज बनाना चाहते थे या फिर उन्होंने ब्रिटिश शासन को धीरे-धीरे हटाकर एक स्वतंत्र भारत के निर्माण के बारे में सोचा!! हमें जवाब नहीं पता।

भारतीय कैसे आत्मनिर्भर हो सकते हैं, इसके दो मुख्य स्रोतों का उल्लेख रवींद्रनाथ जी ने किया है - सबसे पहले, आत्मनिर्भर होने के लिए आपको अधिक आत्मनिर्भरता में विश्वास करने की आवश्यकता है। लोगों का नजरिया हमेशा सकारात्मक रहेगा। इसके लिए सबसे जरूरी है इंसान से इंसानी रिश्ता बनाना, दिल का रिश्ता बनाना।

दूसरा, हम से प्रतिदिन अपनी मातृभूमि का भार वहन करेगा। वहीं पर हमारा सच्चा गौरव और आत्म-धर्म देखा जाता है।

विभिन्न मुद्दों पर आत्मनिर्भर बनने से पहले यह स्पष्ट रूप से जानना आवश्यक है - हम अपने देश के स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि और अर्थव्यवस्था की विभिन्न समस्याओं को कैसे जानेंगे! रवींद्रनाथ जी ने यहां आसान रास्ता दिखाया है। उन्होंने सोचा कि अशांत देश को समझने के लिए पहले देश की जनता को समझना होगा। ग्रामीण भारत को समझना की जरूरत है। कोलकाता

टाउन हॉल में एक चर्चा बैठक आयोजित करके ग्रामीण भारत को नहीं समझा जा सकता है। वह एक ऐसी जगह चाहते हैं जहां गांव के लोग एक साथ आएं। ग्रामीण मेला वह स्थान है। मेलों के आयोजन से हमें ग्रामीण भारत की विभिन्न समस्याओं को समझना होगा और समाधान वही निकलेगा।

स्वाभाविक रूप से, मेले में स्वदेशी समस्या को कैसे समझा जाए जहां मेले का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन आदि है? रवींद्रनाथ जी कहते हैं,

"यात्रा-गीत-मज़ा-खुशी के लिए दूर-दूर से लोग वहाँ [मेले में] इकट्ठा होते थे। स्थानीय उत्पादों और कृषि उत्पादों की प्रदर्शनी लगेगी। वहां सर्वश्रेष्ठ कथावाचक, कीर्तन गायकों और यात्रा करने वाले समूहों को पुरस्कार दिए जाएंगे। वहां, जादू-लालटेन की मदद से, आम जनता को स्वास्थ्य सलाह के बारे में अच्छी तरह से अवगत कराया जाता था, और हमें जो कुछ भी कहना था, जो भी अच्छी या बुरी सलाह थी, उस पर भद्रावद्र में सरल बंगाली में एक साथ चर्चा की जा सकती थी।"

यानी मेला सिर्फ मेला नहीं है। कम से कम रवींद्रनाथ जी सोचते हैं कि समस्या का समाधान उनके आसपास के लोगों के साथ आपसी चर्चा से होगा। यह देखा जा सकता है कि मेले में इन बातचीत के दौरान रवींद्रनाथ जी ने तथाकथित सज्जनों को अपने लोगों के साथ नहीं जोड़ा। लेकिन उन्होंने सज्जन वर्ग को बिल्कुल भी नहीं हटाया। वह मेले के आयोजकों के रूप में उनकी भूमिका को याद करते हैं। ग्रामीण लोगों की बाबू समाज से मानसिक दूरी के कारण रवीन्द्रनाथ जी ने कहा, "देश के लोगों को यदि आप सभा के अवसर पर बुलाएंगे तो वे संदेह के साथ आएंगे, उनके दिमाग खुलने में बहुत देर हो जाएगी। लेकिन मेले के मौके पर जो लोग इकट्ठा होते हैं वे आसानी से अपना दिल खोल देते हैं।"

लेकिन क्या मेलों के आयोजन से ही आत्मनिर्भर भारत का निर्माण संभव है? खुद रवींद्रनाथ जी ने ऐसा नहीं सोचा था। इसलिए उन्होंने एक अलग स्वदेशी समाज बनाने के बारे में भी सोचा। यह मुद्दा निस्संदेह महत्वपूर्ण है।

रवींद्रनाथ जी को ब्रिटिश सरकार का सीधे विरोध किए बिना या संघर्ष को टाले बिना यह कैसे करना है इसकी एक रूपरेखा भी मिली। इन विचारों में आत्मनिर्भर भारत के निर्माण का मुद्दा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। स्वदेशी समाज के गठन के लिए एक अधिनायक होगा और उस अधिनायक के नेतृत्व में कैबिनेट और कर्मचारी एक आत्मनिर्भर समाज के निर्माण में लगे रहेंगे। हालांकि पदाधिकारियों को प्रथम वर्ष में मनोनीत किया जाता है, लेकिन अगले वर्ष से उनका चुनाव सामाजिक द्वारा किया जाएगा। जो लोग इस सोसाइटी से जुड़ना चाहते हैं उन्हें नियमित टैक्स देना होगा। छात्रों को समाज के होने पर भी चुनाव में भाग लेने का अधिकार नहीं होगा।

रवींद्रनाथ जी ने स्वदेशी समाज के लक्ष्यों को भी स्पष्ट रूप से समझाया। विदेश मंत्रालय, रक्षा, पुलिस प्रशासन आदि स्वदेशी समाज से बाहर होंगे। लेकिन शिक्षा-स्वास्थ्य-लाइब्रेरी-व्यायामशाला-खेल का मैदान-बैंक और सभा स्थल बनाने का प्रयास किया जाएगा। उन्होंने स्वदेशी स्कूलों की स्थापना पर जोर दिया। इसके अलावा, रवींद्रनाथ जी ने कुछ अन्य आवश्यक कर्तव्यों का उल्लेख किया है। उदाहरण के लिए, किसी भी प्रकार की

सामाजिक व्यवस्था के लिए अंग्रेजी सरकार का सहारा न लेना; जानबूझकर बिलिती कपड़ों और बिलिती उत्पादों का उपयोग नहीं करना; कार्रवाई के अनुरोध के बिना किसी बंगाली को अंग्रेजी में पत्र नहीं लिखना; अंग्रेजी भोजन, अंग्रेजी वाद्ययंत्र, अंग्रेजी संगीत, शराब पीना, अंग्रेजी-निमंत्रण को बंद करना; समाज के सदस्यों के बीच किसी भी विवाद के मामले में, सबसे पहले अदालत में नही जाना और समाज का न्याय पाने का प्रयास करना; स्वदेशी दुकानों आदि से दैनिक जरूरत का सामान खरीदें।

इनमें से प्रत्येक को ध्यान में रखते हुए, कोई यह समझ सकता है कि ब्रिटिश सरकार को दूर रखकर रवींद्रनाथ जी कैसे एक स्वदेशी समाज के निर्माण में रुचि रखते थे। सरकारी कानून, प्रशासन की ताकत से नहीं, आत्मनिर्भरता में कहेंगे आत्मनिर्भर भारत के निर्माण।

हमारा वक्तव्य लगभग समाप्त होना है। इस अबसर में मैं एक बात कहूंगा - आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में स्वामी विवेकानंद और रवींद्रनाथ जी में अंतर रहा होगा। क्योंकि उनका जीवन दो अलग-अलग धाराओं – विवेकानंद संन्यासी और रवींद्रनाथ जी गृही है। अपने परिब्राजक जीवन में, स्वामीजी ने देखा संन्यासीओं की गृहस्थों के प्रति असीम तिरस्कार है। संन्यासी गृहस्थों के भक्तिमय साष्टांग प्रणाम में रहते हैं। फिर भी, गृहस्थों की दुर्दशा के लिए उनका उपहास और तिरस्कार है। स्वामीजी ने संन्यासीओं से गृहस्थों का ऋण चुकाने का आह्वान किया। आत्मनिर्भर भारत के निर्माण में साधु समाज मुख्य सहायक होंगे।

इसके विपरीत, एक गृही होने के नाते, रवींद्रनाथ जी ने सोचा कि गृहिणियां आत्मनिर्भर कैसे बनेंगी। ब्रिटिश भारत में, उन्होंने इस मामले को अपने ध्यान में लाया। उसकी आँखों में, हर भारतीय की बाहों में ताकत है। उस शक्ति का पूर्ण विकास ही एक नया भारत बनाने का एकमात्र उपाय है। हर्ष की बात यह है कि यहीं पर स्वामी विवेकानंद और रवींद्रनाथ जी ने एक ही मुकाम पर पहुंचे।